ISSN: 2349-4654, UGC: 1340-48783
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 6, सेमिनार विशेषांक, जनवरी 2018

सांगीतिक वाद्यों का उद्‌गम तथा विकास - सांगीतिक पुरातात्त्विक दृष्टि

डॉ. चित्रा शंकर
व्याख्याता, ए-74, विकास विहार, नई दिल्ली

सार-संक्षेप

यह निश्चित है कि सांगीतिक वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानने के लिए पुरातात्त्विक स्त्रोतों पर निर्भर होना पड़ता है। सांगीतिक पुरातात्त्विक दृष्टि से सांगीतिक वाद्यों के चतुर्विध वाद्य प्रकार यथा—तत, अवनद्ध, घन एवं सुषिर वाद्य के विविध रूप-आकार प्रागैतिहासिक काल से ही होने लगते हैं। असंख्य मात्रा में प्राप्त होने लगते हैं और पुरातत्त्वविदों के अनुसंधानों से निरंतर वृद्धि हो रही है। अत: पुरातात्त्विक दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि सांगीतिक वाद्यों के उद्‌गम एवं विकास संबंधी सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए भविष्य में होने वाले पुरातात्त्विक अनुसंधानों के प्रति सजग रहा जाए ताकि पूर्व ज्ञात तथ्यों से उनका सामंजस्य बैठा कर नवीन तथ्यों को सांगीतिक वाद्यों के उद्‌गम एवं विकास के संदर्भ में स्थापित किया जा सके। प्रस्तुत पत्र में इन्हीं तथ्यों की ओर ध्यान दिया गया है।

मुख्य शब्द : चित्रकला, वाद्य, शरीर वीणा, पुरातत्व, मोहनजोदड़ो

शोध-पत्र

भारत में और विश्व में पुरा-सम्पदा इतिहास लेखन और कला की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान स्थापित कर चुकी है और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में उभर कर सामने आई है। ''इतिहास एवं कला क्षेत्र के अनेक पक्ष केवल पुरातात्त्विक साधनों से ही मुखरित हैं—यथा जहाँ-जहाँ साहित्य मौन धारण कर लेता है, उस पक्ष का ज्ञान वाग्मी 'पुरातत्त्व' प्रदान करता है।''[1]

वर्तमान संगीत और सांगीतिक वाद्यों की परिष्कृत एवं विशिष्टीकृत अवस्था का उद्‌गम स्थल भी उसी अत्यंत धूमिल सुदूर अतीत की धुंध में छिपा है, जहाँ से मानव-जाति का उद्‌भव हुआ है। मानव जीवन की आदिम अवस्था से ही 'संगीत' उसकी स्वाभाविक कला प्रियता का एक अभिन्न अंग रहा है। संभवत: प्रकृति के मनोरम संगीत को समझने के पश्चात् ही तत्कालीन मानव ने सांगीतिक वाद्यों का विचार अपने मस्तिष्क में ग्रहण किया होगा। श्री बी.सी.देव ने अपनी पुस्तक 'वाद्य-यंत्र' में कहा है ''वस्तुत: सबसे पहला वाद्य स्वयं मनुष्य का शरीर है, जो पैर पटककर, ताली बजाकर, जांघों या नितंबों को पीटकर लय-ताल उत्पन्न करने के काम आता रहा है।''[2] उनके अनुसार इसीलिए हमारे प्राचीन विद्वानों ने मानव-कंठ ध्वनि को गात्र-वीणा (शरीर वीणा) या दैवी वीणा (ईश्वर-प्रदत्त वीणा) तथा अन्य सभी वीणाओं को दारवि वीणा (लकड़ी की वीणा) कहा था। ऐसी अवस्था में अब हम वाद्यों की एक ही परिभाषा की कल्पना कर सकते हैं कि पत्थर के टुकड़े या पत्ती से लेकर कंप्यूटरीकृत अत्यंत जटिल इलैक्ट्रानिक ध्वनि संश्लेषक तक, हर वह पदार्थ 'संगीत-वाद्य' है, जो संगीत उपयोगी ध्वनि उत्पन्न कर सके।

अपनी आरंभिक अवस्था में साधनों के अभाव में तत्कालीन मानव ने सांगीतिक वाद्यों के विचार को किस प्रकार रूप दिया होगा। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

वाद्यों के उद्‌गम के संदर्भ में डॉ. लालमणि मिश्र जी का यह कहना है ''तत्कालीन समय में ऐसी सारी सामग्री, जो प्रकृति ने उत्पन्न की है, बड़ी कुशलता से किसी-न-किसी प्रकार के नाद-उत्पादक यंत्र में प्रयुक्त कर दी गई।''[3] साथ ही उनका यह भी मानना है कि मानवता ने संस्कृति के प्रारंभिक चरणों में ध्वनि उत्पन्न करने की विधियाँ सीखी होंगी-चोट करने से, थपथपाने से, हिलाने से, खरोंचने से, रगड़ने से एवं फूँकने से ये सब क्रियाएँ अनगिनत युगों तक करने के पश्चात् ही वाद्यों के निश्चित रूप की शोध हुई होगी। प्रारंभ में लोगों ने वाद्यों को बनाना सीखा, लेकिन इनका प्रयोग संगीत के लिए नहीं वरन् जादुई प्रभाव उत्पन्न करने के लिए होता था। इनकी महत्त्वपूर्ण ध्वनियाँ जोरदार और तीखी थी। इनकी वादन क्रिया चोट करके, खरोंचकर या घिसकर होती थी। उनके अनुसार डरावने तथा जादुई प्रभावोत्पादक प्रयोगों से संगीत के वास्तविक आनंद प्रदान करने योग्य बनने तक वाद्यों एवं संगीत को बड़ी लम्बी दूरी तय करनी पड़ी। अत; ऐसा मानना बिल्कुल भी अनुचित नहीं होगा कि अतीत के उस आदि मानव की क्रमोन्नति से ही श्रृंखलानुसार उन्नतर सभ्यता व संगीत तथा सांगीतिक वाद्यों का विकास हुआ, जिनका अतीव दर्शन हम पुरातात्त्विक सम्पदा में बृहद् रूप में करते है।

संभवत: अन्य कलाओं में संगीत ही एकमात्र ऐसी कला है, जिसकी कलात्मक अभिव्यक्ति संगीत के अतिरिक्त मूर्तियों, भित्तशिल्प, चित्रों, वास्तुकला, सिक्कों आदि के माध्यम से हुई है। तत्संबंधी इतिहास जानने

के साधन, सामग्री और प्रमाण लेख रूप में और भौतिक अवशेषों के रूप में होते हैं। भौतिक अवशेष पुरातात्त्विक सामग्री रूप में होता है।

''पुरातत्त्व अपने सरल और प्रत्यक्ष बोध में उस विज्ञान का एक प्रकार है, जो जीवित है और जिसे मानवता से आस्वाद्य बनाना आवश्यक है।''[4] पुरातत्त्व, पुरावशेषों के आधार पर मानव के अतीत का अध्ययन है। प्रसिद्ध विद्वान डॉ. सांकलिया के मतानुसार पुरावशेषों का अध्ययन ही पुरातत्त्व है। परन्तु कालांतर में पुरातत्त्व का विकास हुआ और पुरातत्त्व, पुरावशेषों का अध्ययन मात्र न रहकर मानव के अतीत के अध्ययन के रूप में प्रस्थापित हुआ। जिसके आधार पर मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन जैसे-पुरास्थलों के प्रकार, जीवनयापन, रहन-सहन, प्राकृतिक सम्पदाओं इत्यादि की प्राप्ति एवं इन सबके परिप्रेक्ष्य में मानव संस्कृति के विकास तथा उसमें व्याप्त कला के विभिन्न पहलुओं में सांगीतिक वाद्यों के अध्ययन की ओर विशेष प्रकाश डालने में सहायक सिद्ध हुआ।

पुरातात्त्विक सामग्री का क्षेत्र बहुत व्यापक है। महेश चन्द्र जोशी के अनुसार ''प्रागैतिहासिक एवं पुरातिहासिक मानव निर्मित प्रस्तर उपकरण, प्राकृतिक गुफाओं में मानव द्वारा बनाये गये भित्तिचित्र तथा इस काल की अन्य कलाकृतियाँ, पुरातिहासिक एवं ऐतिहासिक युगों के नगर सम्बन्धी भग्नावशेष, सामान्य निवास गृहों, प्रसादों एवं धार्मिक स्मारकों के अवशेष, स्तूप, विहार, चैत्य, मंदिर, गुहा-विहार, मठ, विद्यालय, स्नानाकुण्ड, ध्वज्स्तम्भ, तक्षित एवं चित्रित प्रतिमाएँ, काल, प्रस्तर, स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस्य, पीतल, लौह, अष्टधातु, हाथी दाँत आदि से निर्मित मानवी अथवा देवी मूर्तियाँ, देवालयों, विहारों तथा गुफाओं की छतों एवं दीवारों पर, कपड़े तथा कागज़ पर आलेखित चित्र, मुद्राओं तथा मुहरों पर अंकित प्रतिमाएँ तथा प्रतीक, विविध प्रकार के मिट्टी के पात्र, प्रतिमाएँ, खिलौने एवं मिट्टी के बर्तनों पर की गई चित्रकारी, पशु-पक्षियों की आकृतियाँ तथा प्राकृतिक दृश्यचित्र, शिलाखण्डों, चट्टानों, भवनों, तामपत्रों और मूर्तियों पर लिखे गये अभिलेख इत्यादि रखे जा सकते हैं।''[5]

सांगीतिक वाद्यों के उद्गम तथा विकास के संदर्भ में उपरोक्त वर्णित पुरातात्त्विक सामग्री के समग्र रूप में प्राचीन भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, सिक्के व मुद्राओं की प्रमुख रूप से अध्ययन के लिए उपादेयता सर्वाधिक है। अत: सांगीतिक दृष्टि से वाद्यों के उद्गम तथा विकास को जानने के लिए सर्वप्रथम चित्रकला पर दृष्टि डालेंगे—

1. चित्रकला—चित्रकला के अन्तर्गत सांगीतिक वाद्यों का दर्शन हमें सर्वप्रथम प्रागैतिहासिक युग में आदि मानव द्वारा चित्रित प्राकृतिक निर्मित गुफाओं तथा चट्टानों की शिलाओं पर प्राप्त होता है। ''प्रागैतिहासिक कालीन शिलाचित्रों की खोज 19वीं शताब्दी के आठवें दशक में आकस्मिक रूप से हुई, इससे पूर्व इनका ज्ञान किसी को नहीं था।''[6] प्रागैतिहासिक भारत के विभिन्न शैलाश्रयों से उत्तरपाषाण काल से ऐतिहासिक कालपर्यन्त वाद्य वादकों के अनेक शैलचित्र प्राप्त हुए हैं। जिसमें चतुर्विध वाद्य प्रकारों को देखा जा सकता है।

चित्र 1 — तत् वाद्य (जाओरा)[7]

चित्र 2 — अवनद्ध वाद्य (चतुर्भुज नाथ, चम्बल)[8]

चित्र — 3 घन वाद्य (पट्डक्कल)[9]

चित्र — सुषिर वाद्य (सतकुंडा, रायसेन)[10]

ऐसे शिलाचित्रों की संख्या असंख्य है, जिनमें चतुर्विध वाद्यों के विविध प्रकार देखे जा सकते हैं और पुरातत्त्व विभाग के सहयोग से इनकी संख्या में वृद्धि होती जा रही है। अत: वर्तमान संगीत वाद्यों के साथ इन चित्रित दृश्यों की तुलना करते हुए इनमें वाद्यों के उद्गम और विकास को आंका जा सकता है। इस दृष्टि से इन्हें संगीत वाद्यों का पूर्वज भी कहा जा सकता है। इससे सदियों पुरानी उस विचारधारा का भी खण्डन किया जा सकता है, जिनमें वैदिक काल ही प्राचीनतम माना जाता रहा है और उससे पूर्व का इतिहास मात्र कल्पना पर आधारित माना जाता रहा

है। भारतीय संगीत एवं संगीत वाद्यों के इतिहास को पुरातत्त्व की यह सबसे बड़ी देन है।[11]

मोहनजोदड़ो की सभ्यता में मनुष्य पत्थर और मिट्टी के बने घरों में रहने लगे थे। इस सभ्यता में ताम्र तथा मिट्टी की पट्टियों पर चित्रकारी की गई। इस सभ्यता से प्राप्त चित्रों में भी संगीत वाद्यों का दर्शन प्राप्त होता है।

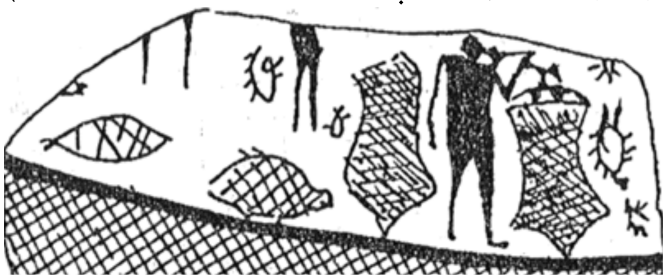

चित्र —5 सुषिर वाद्य, सिंधु सभ्यता।[12]

इसके पश्चात् चित्रकला में सांगीतिक वाद्य रूपों की विकास यात्रा में पूर्व बौद्धकाल की जोगीमारा के गुहा- चित्र (प्राय: 300 ई.पू.) प्राप्त होते हैं। जिन्हें पुरातत्त्वविदों ने मौर्य संस्कृति से संबंध बताया है।[13] यद्यपि इस गुफा के चित्र खण्डित अवस्था में हैं लेकिन वाद्य रूपों, नृत्य के दृश्यों को श्री विंसेट स्मिथ ने भी प्रमाणित किया है।[14]

1819 में बौद्ध काल की 'अंजता गुफाएँ' खोजी गई। अजंता की छोटी-बड़ी गुफाएँ कुल 29 हैं। जिनमें की गई चित्रकारी में संगीत एवं सांगीतिक वाद्य बहुतायत में प्राप्त हुए हैं। एक उदाहरण में 'गुफा संख्या 1' के चित्र 'महाजनक जातक' में नर्तकी के चारों ओर सुंदरियों का समूह मंजीरे, वेणु और मृदंगादि वाद्यों के साथ चित्रित है।[15] इसी प्रकार गुफा संख्या-9 के चित्र 'स्तूप पूजा' तथा गुफा संख्या 16 के चित्र 'अजातशत्रु व बुद्ध की भेंट' में—शहनाई, झांझ, मृदंग, बाँसुरी व तुरही वादक दिखाए गए हैं।

चित्र —6 वीणा और मंजीरा वादक, बोधिसत्व पद्मणि, गुफा-1।[16] अजंता

अजंता के बाद बाघ की गुफाएँ 1907-08 में प्रचार में आई। इसमें सात गुफाओं के चित्र पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं, केवल गुफा संख्या 4-5 में कुछ चित्र बचे हैं, जो क्षत-विक्षत अवस्था में है। इन चित्रों में वीणा, मृदंग, मंजीरे और गिटार जैसा वाद्यदिखाया गया है। प्रेमचन्द गोस्वामी ने बाघके चित्रों में संगीत एवं सांगीतिक वाद्यों की प्रमुखता पर बल दिया है।

पूर्व मध्यकाल में 579 ई. में बादामी गुफाओं के चित्र, और 600-650ई. में सित्तनवासल की गुफाओं के चित्र, जैन और ब्राह्मण धर्म से संबंधित चित्र हैं जिनमें समूह रूप में संगीत मण्डली को वाद्य-यंत्रों के साथ चित्रित किया गया है। इसी प्रकार चोल काल में तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर में एक चित्र में गन्धर्वगण को संगीत के विभिन्न वाद्यों को बजाते हुए चित्रित किया गया है।

मध्यकाल में भित्तिचित्रों के विपरित अधिकतर पुस्तकों के दृष्टांत चित्र निर्मित हुए। 15वीं शताब्दी में गुजरात तथा मेवाड़ में एक नवीन शैली का उदय हुआ, जिसे राजस्थानी, राजपूत या हिंदू शैली के नाम से पुकारा गया।[17] राजस्थानी परंपरा सिद्धांतत: चित्रकार प्रणाली के रागों और रागिनियों की अनुयायी है।[18] इसके साथ ही कृष्ण लीला सम्बन्धी भक्ति चित्र, रासलीला, नायिका भेद, रागमाला, बारामासा, रीतिकालीन छंद शास्त्रों पर आधारित चित्र, ढोलामासा आदि विषयों पर बूंदी, उदयपुर, जयपुर, अलवर, मेवाड़ तथा अन्य उपशैलियों के चित्रों में सांगीतिक वाद्यों के विविध प्रकारों को भी चित्रित किया गया है।

चित्र —7 बसंत रागिनी, मारवाड़, 1623 ई.[19]

तत्पश्चात् 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अकबर ने मेवाड़ को छोड़कर समस्त राजपूताने को अपने प्रभाव में लिया। जिससे राजस्थान की चित्रशैली मुगल कला में समन्वय से परिमार्जित होने लगी।[20] मुगल शैली में रामायण, महाभारत, रसिक प्रिया, प्रेम प्रसंगों, बादशाहों का वैभव, युद्ध, आखेट दृश्यों, ताजपोशी व आमोद-प्रमोद, रागमाला इत्यादि विषयों में भी सांगीतिक वाद्यों को प्रचुरता से दर्शाया गया है। मुगल कला के पराभाव के पश्चात् कुछ क्षेत्रीय उपशैलियों का उद्भव हुआ जो मुगल चित्रकला के पदचिन्हों पर चलते हुए स्थानीय मान्यताओं को आत्मसात करती गई। ये मुर्शिदाबाद, फरूर्खाबाद, दक्षिण में हैदराबाद, अहमद नगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, बिहार में पटना और पंजाब की पहाड़ियों में स्थित छोटे-छोटे राज्य थे जिनमें उत्तर भारत में अवध का राज्य भी शामिल था।

इसके पश्चात् 16वीं–17वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक पहाड़ी कलम में कांगड़ा, बसोहली, गढ़वाल, चम्बा शैली में भी चित्रों का मुख्य विषय रागमाला, राग–रागिनी, बारामासा, गीत–गोविंद ही था, जिसमें सांगीतिक वाद्यों का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है।

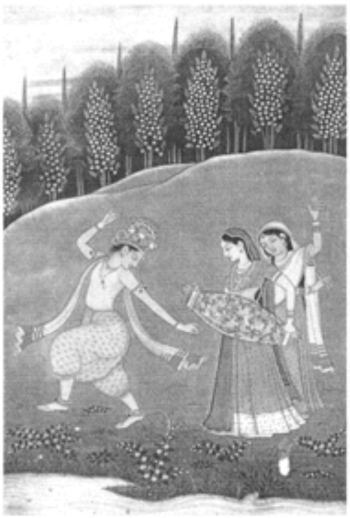

चित्र —8 राग बसंत कांगड़ा, 18वीं शताब्दी[21]

मूर्तिकला

सांगीतिक पुरातात्त्विक दृष्टि से सांगीतिक वाद्यों का इतिहास लिखने का दूसरा सबसे बड़ा माध्यम है, मूर्तिकला। ''पत्थर को चारों ओर से तराशकर मूर्तिका रूप दिया जाता है। जिसे चारों ओर से देखा जा सकता है। दूसरा जिसमें पत्थर, चट्टान, धातु अथवा काष्ठ के फलक पर उकेरकर रूपांकन किया जाता है। इसमें चपटे फलक का पृष्ठभाग सपाट रहता है।''[22] मूर्तिकला की इन दोनों निर्माण शैलियों के लिए अंग्रेज़ी का Sculpture शब्द इस्तेमाल किया जाता है जिसका अर्थ है—मूर्तिकला या शिल्पकला।

भारत में दूसरी सदी ई.पू. से लेकर सांची और उसके बाद के कालों तक शिल्पकला का अनन्त भण्डार है। जिसके आधार पर सांगीतिक वाद्यों के विकास पर एक विशेष प्रकार की दृष्टि डाली जा सकती है।

मूर्तिकला में संगीत वाद्यों के उदाहरण हमें सिंधु सभ्यता के क्षेत्र से प्राप्त वीणा वादक (चित्र 9) की मूर्ति आदि के रूप में देखने को मिलते हैं। तदोपरान्त मूर्तिकला में संगीत वाद्यों का दर्शन मौर्यकाल, शुंगकाल, कुषाण, सातवाहन काल, गुप्त काल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल इत्यादि सभी में प्राप्त होता है। पुरातात्त्विक साधनों में मूर्तिकला एक ऐसा सशक्त प्रमाणित स्रोत है जिसे शब्दों के घेरे में समाविष्ट करना अत्यंत कठिन कार्य है। ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि मूर्तिकला में संगीत के अन्तर्गत नृत्य–वाद्य ही प्रथम प्रेरणा या उद्देश्य रूप में रहा है। जिसमें आद्यैतिहासिक काल से लेकर प्रत्येक काल में मूर्तिकला स्वतंत्र रूप में और स्थापत्य के अंतर्गत भित्तिशिल्प के रूप में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है।

चित्र—9 [23] (वीणा वादक की मूर्ति जो 1500 ई.पू. में निर्मित है, आकृति की दृष्टि से इसे वीणा का आदि रूप कहा जा सकता है)

पुरातात्त्विक साक्ष्यों में भारत की मूर्तियाँ मुख्यत: धार्मिक तथा काल्पनिक प्रेरणाओं से ओत–प्रोत हैं, जिनमें कलात्मक मूर्तियाँ वाद्य वादन एवं नृत्यरत वादन से अधिक संबंधित हैं। देवदासियों एवं अप्सराओं को आदर्श मानकर काल्पनिक दृश्य शिल्पों की रचना में वादन एवं नृत्य करती नारी आकृतियाँ साक्ष्य रूप में उपलब्ध हैं जिनमें कई स्थानों पर पुरुषों को भी वाद्य वादन करते हुए दर्शाया गया है। इनके अतिरिक्त विभिन्न दैवीय आकृतियाँ, गण, शालभंजिकाएँ और नृत्यरत वादक समूह इत्यादि बहुतायत में विभिन्न कालों की मूर्तिकला में देखने को मिलते हैं।

चित्र—10, वीणाधारी शिव 11वीं शती, उड़ीसा [21]

पुरातत्त्व के सहयोग से भारत के विभिन्न स्थानों से ऐसी कई मूर्तियाँ और शिल्पकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं, जिनके आधार पर उस काल के प्रचलित वाद्यों के विषय में रोचक सामग्री प्राप्त होती है। जिसमें वाद्यों के

आकार, प्रकार, बनावट, निर्माण सामग्री आदि के विषय में भी अनुमान लगाया जा सकता है। साथ ही वाद्यों की वादन क्रिया आदि के विषय में भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

चित्र—11 तबला वाद्य, भाजा गुफा, महाराष्ट्र [25]

वास्तुकला

पुरातात्त्विक दृष्टि से वास्तुकला का क्षेत्र चित्रकला एवं मूर्तिकला से कहीं अधिक व्यापक है। चित्रकला और मूर्तिकला का बहुत बड़ा भाग भारत के प्राचीनकालीन स्मारकों की निर्माण-गाथा में वास्तुकला का प्रमुख अंग है।

वास्तुकला के मर्मज्ञ विज्ञान डॉ. कुमार स्वामी के शब्दों में ''भारत की सभी देन उसके दर्शन से अनुप्राणित हैं। जहाँ तक भारतीय कला की उद्भावना का संबंध है, उसमें कलाकार के मानसिक योग एवं प्रारंभिक धार्मिक संस्कारों का होना अनिवार्य है।'' अत: भारत में जहाँ भी वास्तुकला का दर्शन होता है वहाँ धर्म का आवरण ओढ़े हुए विविध सांगीतिक वाद्यों का प्रदर्शन संगीत के प्रमुख विषय के तौर पर उभरकर सामने आता है। स्थूलत: स्तूपों, मंदिरों एवं गुहावास्तु के प्रकारों को अलंकृत करने वाले शिल्प द्वारा सांगीतिक वाद्यों के विकास को समझने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

(क) स्तूप स्थापत्य

बौद्ध धर्म से संबंधित स्तूप, सम्बन्ध वेदिका, तोरण, चैत्य, विहार समेत वे प्रारंभिक वस्तु संरचनाएँ हैं, जिनके शिल्प में संगीत, नृत्य व नाट्य कलाओं के अंतर्गत सांगीतिक वाद्य बौद्ध धर्म के प्रचार माध्यम के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुके थे। 'जातक कथाओं में नट-नाटकों का शाही मनोरंजन के अंग के रूप में चारों कलाओं-गीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य का पर्याप्त उल्लेख मिलता है।[26]

इसी प्रकार सांची, भरहुत, बोधगया, अमरावती के स्तूप स्थापत्य में उत्कीर्ण सांगीतिक वाद्यों में विभिन्न प्रकार की वीणाओं, मंजीरा, हुडुक, बिगुल, डफ, डमरू, वेणु, पटह, वंशी, शहनाई इत्यादि के अतिरिक्त वाद्यवृंद समूह भी प्रचुरता से दिखाई देते हैं। इसमें स्त्री-पुरुष, सेवकों, अप्सराओं गान्धर्वों इत्यादि को इन विभिन्न प्रकार के वाद्यों की वादनरत मुद्रा में दिखाया गया है।

चित्र—12, संगीत मंडली, प्रथम शती ई.पू., उत्तरी द्वार स्तंभ, सांची [27]

(ख) गुहावास्तु

विशाल चट्टानों को काटकर चैत्य घर एवं गुहा-विहार भिक्षुओं के सामूहिक आवास की व्यवस्था वाले शिलाश्रय को कहा जाता है। इन शिलाश्रयों के उत्कीर्ण कार्य में अलंकार, मूर्तियों, स्तम्भ, आकृति तथा मण्डप में नर्तकों एवं वाद्य वादकों को भी दिखाया गया है।

चित्र—13 संगीत-प्रदर्शन, गुफा संख्या 26, अजंता [28]

तृतीय शती ई.पू. में अशोक हीनयान युग से सातवीं-आठवीं शती ई. के महायान युग तक लगभग 1200 गुफाएँ चट्टान काटकर बनाई गई। इन गुफाओं को लगभग 50 केन्द्रों में विभक्त किया जा सकता है। जिनमें से 900 गुफाएँ बौद्ध धर्म से, 200 जैन धर्म से तथा 100 हिंदू धर्म से सम्बन्धित हैं। गुहावास्तु के इस व्यापक समयकाल में उत्कीर्ण शिल्प के अन्तर्गत सांगीतिक वाद्यों की विकास यात्रा भी विद्यमान है, जिसमें चतुर्विध वाद्य प्रकारों को देखा जा सकता है।

(ग) मंदिर स्थापत्य

मंदिर स्थापत्य भारतीय वास्तुकला का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। वैदिक युग की यज्ञशाला के वर्णित स्वरूप से ही संभवत: मंदिर वास्तु के विकास को प्रेरणा मिली।[29] देवी-देवताओं के मूर्त रूपों की पूजा हेतु स्थापना के लिए जो सुंदर भवन निर्मित हुए वही भवन 'मंदिर' कहलाए। इसका संबंध हिंदू धर्म के विविध सम्प्रदायों के अतिरिक्त भारतीय मूल के जैन एवं बौद्ध धर्मों के साथ भी है।[30]

मंदिर स्थापत्य की वास्तु योजना केवल पूजा गृह ही नहीं, तथापि सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन के केन्द्र भी बने। जिससे अष्टदिक्पाल, देव, दनुज, मनुष्य, किन्नर, गन्धर्व, अप्सराएं, नाना प्रकार के जीव-जन्तु मंदिर की दीवारों पर भित्तिशिल्प के रूप में विराजमान हुए। जिसमें असंख्य स्थानों पर सांगीतिक वाद्यों को विभिन्न क्रियाओं में भित्तिशिल्प के रूप में उकेरा गया। जिनका अतीव दर्शन गुप्तकाल के मंदिरों से लेकर, मध्यकालीन-नागर, द्रविड़ व बेसर शैली तथा उत्तर एवं दक्षिण भारत के सभी मंदिरों में दिखाई देता है।

चित्र—14 घन वाद्य, कोणार्क—सूर्य मंदिर, उड़ीसा (1000-1250 ई.) [31]

मुद्राएँ व सिक्के

सांगीतिक वाद्यों की प्राप्ति चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला के अतिरिक्त विभिन्न कालों में प्रचलित मुद्राओं व सिक्कों से भी होती है, जो किसी शताब्दी के बारे में तत्सम्बन्धी जानकारी देने में एक महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक संपदा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सर्वप्रथम सिंधु घाटी की सभ्यता से संबंधित मोहरों पर वीणा वाद्य की प्राप्ति होती है। 'इसके अतिरिक्त सिंधु घाटी की सभ्यता से कुछ ताबीज प्राप्त हुए हैं जिन पर ढोल और मृदंग जैसे वाद्यों को भी उकेरा गया है।'[32]

इसके अतिरिक्त कुषाणों के सिक्के, गुप्त मुद्राएं, चोलों की मुद्राएं, पांडयवंश की मुद्राएँ तथा हैदराबाद तथा त्रावणकोर के नवाबों द्वारा निर्मित सिक्के, इन सभी पर मुख्य रूप से डमरू, वीणा, शंख, बाँसुरी इत्यादि की आकृति मिलती है। इन सिक्कों पर बने वाद्यों से हमें सांगीतिक जानकारी प्राप्त होती है, जिससे हम उनकी उत्पत्ति, विकास एवं प्रचार के बारे में जान सकते हैं।

चित्र—15 तत् वाद्य, ·Bow Shaped Instrument Based on Indus Valley Inscriptions [33]

उपरोक्त वर्णित परिचर्चा के अतिरिक्त सांगीतिक पुरातात्त्विक दृष्टि से सांगीतिक वाद्यों से अवगत कराने वाले अन्य पुरातात्त्विक माध्यम भी हैं, जिनसे महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, इनमें बहुत से ज्ञात तथ्यों का अभी स्पष्टीकरण होना बाकी है अर्थात् जिन पर पुरातत्त्वविदों द्वारा अनुसंधान किया जा रहा है, इसके अतिरिक्त वह सशक्त ज्ञान की शाखाएँ जो पुरातात्त्विक दृष्टि से अभी अज्ञात है, जिन पर भविष्य में शोध होगा। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि पुरातात्त्विक सामग्री में संगीत एवं सांगीतिक वाद्यों से अवगत कराने वाले प्रमाण प्रचुर मात्रा में है, या यूं कहा जाए कि उनकी संख्या अनगिनत हो सकती है।

अत: पुरातात्त्विक माध्यमों में मुखरित सांगीतिक वाद्यों संबंधी इस अनन्त ज्ञान के भण्डार में हमें विभिन्न प्रकार की वीणाएं, दुन्दुभि, वंशी, वेणु, ढोल, डफ मंजीरा, खड़ताल, घंटा आदि ज्ञात वाद्यों और कई अज्ञात वाद्य रूपों आदि के उदाहरण चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, सिक्के इत्यादि में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलते हैं। जो वस्तुत: प्रागैतिहासिक चित्रकला तथा अद्यैतिहासिक मोहनजोदड़ों से लेकर शुंग, भरहुत, सांची, सातवाहन, गुप्तकाल, जैनकाल, पल्लव, चोल, पाण्डय, चालुक्य, राष्ट्रकूटों, होसला, खजुराहो, कोणार्क, भुवनेश्वर, बाघ, बादामी, बेलूर इत्यादि लगभग सभी कालक्रमों के विभिन्न चरणों में अपना अस्तित्व कायम किए हुए है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सांगीतिक वाद्यों के उद्‌गम और विकास की पूर्ण-गाथा पुरातात्त्विक माध्यमों में मुखरित है। भारतीय संगीत के चतुर्विध वाद्य प्रकारों, यथा-तत्, अवनद्ध, घन एवं सुषिर वाद्य के विविध रूप इन साधन सामग्रियों में यथासंभव विद्यमान हैं।

चित्र—16 वीणा वादक[34] (समुद्रगुप्त के समय के स्वर्ण के सिक्कों में समुद्रगुप्त को स्वयं को वीणा बजाते हुए दिखाया गया है)

यद्यपि स्थूल रूप से इन पुरातात्त्विक साधनों के सहयोग से प्रत्येक वाद्य प्रकार के उद्‌गम और समय-समय पर उसके रूप-आकार में होने वाले परिवर्तन में उसके विकास को देखा जा सकता है। तथापि सूक्ष्म रूप से पुरातत्त्व के यह मूर्त माध्यम सांगीतिक वाद्यों के संदर्भ में पूर्ण जानकारी प्रदान करने में सहायक सिद्ध नहीं हो सकते। सांगीतिक वाद्यों के केवल रूप एवं आकार में दिखाई देने वाले परिवर्तन को ही आंका जा सकता है, वाद्यों के संदर्भ में उनकी निर्माण-विधि, वादन-विधि, वादन-शैली जैसे सूक्ष्म अवयवों के रहस्य को इन पुरातात्त्विक माध्यमों द्वारा कदापि स्पष्ट नहीं किया जा सकता अर्थात् इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता। सांगीतिक वाद्यों के उद्‌गम एवं विकास के संबंध में पुरातात्त्विक दृष्टि से वाद्यों के क्रमबद्ध श्रृंखलात्मक परिचय को केवल अनुमान के आधार पर एक सीमा तक ही उजागर किया जा सकता है। इस संबंध में विधिवत तरीके से निश्चित रूप में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। साथ ही यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि पुरातात्त्विक खोजों का निश्चित समय नहीं हो सकता ना जाने कब क्या खोज हो जाए और नई जानकारी के आधार पर पूर्व प्रचलित तथ्य को बदलना पड़ जाए, ऐसी स्थिति में सांगीतिक वाद्यों के उद्‌गम और विकास की दृष्टि से किसी निश्चित श्रृंखला को मान्यता पुरातत्त्व के आधार पर नहीं दी जा सकती, यह भविष्य में होने वाले अनुसंधानों के संदर्भ में परिवर्तनशील है।

यह सत्य है कि पुरातात्त्विक दृष्टिकोण में सांगीतिक वाद्यों की पूर्ण जानकारी ज्ञात नहीं हो सकती, फिर भी इसके महत्त्व को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। वर्तमान में यह पुरातात्त्विक सम्पदा भारतीय संगीत एवं सांगीतिक वाद्यों के इतिहास की दृष्टि से एक अमूल्य धरोहर के रूप में उभरकर सामने आई है। सांगीतिक वाद्यों के इतिहास का एक बड़ा भाग इसी पुरा-सम्पदा पर ही आधारित है, इसीलिए शास्त्रों में वर्णित या लिखित इतिहास में वर्णित वाद्यों के विधिवत क्रमानुसार विवरण के तुलनात्मक अध्ययन में पूरी तरह से खरा न उतरने पर भी सांगीतिक वाद्यों के पुरातात्त्विक आधारित इतिहास को नकारा नहीं जा सकता।

वह कौन सा मुख्य कारण है जिसकी वजह से सांगीतिक वाद्यों के उद्‌गम एवं विकास के परिप्रेक्ष्य में हमें पुरातात्त्विक दृष्टिकोण को महत्त्व देना आवश्यक हो जाता है, इस तथ्य पर यहाँ विषय के स्पष्टीकरण के लिए जानकारी देना आवश्यक हो जाता है।

इस संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है-पुरातात्त्विक अनुसंधान। भारत में पुरातत्त्वविदों के निरंतर सहयोग से अनेक स्थलों पर उत्खनन कार्य सम्पन्न हुए हैं, जिससे प्रागैतिहासिक सभ्यहीनता, अर्द्धसभ्यता एवं सभ्यता के क्रमिक इतिहास से हम परिचित हो पाए हैं। सभ्यता के इसी क्रमिक विकास में ही मानव-जाति के अंतर में निहित कला चेतना का ज्ञान भी हमें उत्खनित सामग्रियों से ही होता है। आकस्मिक रूप से सामने आने वाली खोजों से प्राप्त तथ्यों से जुड़े रहस्यों को सुलझाने के लिए पुरातत्त्वविद अपने अनुसंधान को निरंतर जारी रखते हैं और किसी विषय विशेष के संदर्भ में नवीन तथ्यों को जोड़ने के लिए एवं भूत एवं वर्तमान में सामंजस्य बैठाने के लिए प्रयासरत रहते हैं। अर्थात् कहने का भाव यह है कि यह कोई नहीं जानता कि भविष्य में पुरातत्त्व के सहयोग से हम और किन-किन अज्ञात तथ्यों को कब और कैसे जान पाएँगे। तत्पश्चात् ऐसी स्थिति में पूर्व ज्ञात तथ्यों से भविष्य में प्राप्त होने वाले नवीन तथ्यों का मूल्यांकन करना, जिससे अन्य नवीन विचारों का उद्घाटन होना, यह अपने आप में बहुत ही रोमांचक अहसास है।

सांगीतिक पुरातात्त्विक दृष्टि से सांगीतिक वाद्यों का अस्तित्व भी सदियों से तब तक वैदिक परम्परा पर ही आधारित रहा, जब तक कि पुरातत्त्व के सहयोग से हम पूर्व वैदिक युग से परिचित नहीं हो पाए थे। सिंधु घाटी की सुव्यवस्थित नागरिक सभ्यता में पाए जाने वाले सांगीतिक वाद्यों का अस्तित्व सदियों तक अंधकार में ही रहा और उससे भी पहले मानव जाति के आरंभ से जुड़े प्रारम्भिक संगीत एवं सांगीतिक वाद्यों की तो कल्पना भी दुरूह ही थी।

इस संदर्भ में 'भारतीय संगीत वाद्य' पुस्तक के लेखक डॉ. लालमणि मिश्र जी के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके अनुसार- ''भारतीय परंपरानुसार अन्य विषयों के समान संगीत का सम्बन्ध भी वेदों से माना गया है। यद्यपि आज वैदिक युगीन संगीत की गान-पद्धतियों तथा प्रयुक्त वाद्यों की सुनिश्चित रूपरेखा के सम्बन्ध में हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते, किंतु वेदों में निहित समस्त ज्ञान तथा संगीत-विषयक उपलब्ध सामग्री को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह समाज का आदिरूप नहीं था। विषयों का जिस प्रकार गहन अध्ययन उस युग में किया जा चुका था वह इस बात की ओर निश्चित संकेत करता है कि बौद्धिक परिपक्वता की उस श्रेणी तक पहुँचने के लिए समाज को सहस्त्रों वर्षों की यात्रा करनी पड़ी होगी अर्थात् वैदिक ज्ञान का गठन एवं संकलन जिन मनीषियों द्वारा हुआ है वे

इस सृष्टि के आदि पुरुष नहीं हो सकते। अतएव संगीत सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री भी संगीत का आदिरूप नहीं बन सकती। अत: यह निर्विवाद है कि जो भी संगीत की उत्पत्ति एवं प्रारंभिक विकास का ज्ञान प्राप्त करना चाहेंगे, उन्हें प्रागैतिहासिक प्राणियों एवं प्रस्तरीभूत अवशेषों का भी ज्ञान प्राप्त करना होगा।''[35]

तत्पश्चात् इतिहास काल के आरंभ से लेकर आने वाले प्रत्येक चरण में शताब्दियों के इतिहास को संजोये हुए पुरातात्त्विक अवयवों में प्राप्त होने वाले संगीत एवं सांगीतिक वाद्यों के दृश्य रूपों में प्रत्येक समय विशेष में प्रचलित रहे वाद्यों के विविध प्रकारों के विवरण का ज्ञान संचित है। जिसमें समय के साथ-साथ पुरातात्त्विक अनुसंधानों से निरंतर नवीन तथ्य प्रकाश में आते रहे हैं और संभवत: भविष्य में भी आते रहेंगे।

अन्त में प्रस्तुत विषय की व्यापकता को केन्द्रित करते हुए सांगीतिक पुरातात्त्विक दृष्टि से यह तथ्य अतिमहत्त्वपूर्ण है कि भविष्य में होने वाले पुरातात्त्विक अनुसंधानों के आधार पर नवीन तथ्यों के प्रति संगीत एवं सांगीतिक वाद्यों के संदर्भ में सचेत रहना अतिआवश्यक है। तभी हम पूर्व ज्ञात एवं नवीन तथ्यों में संतुलन बैठा पाएँगे और सांगीतिक वाद्यों के उद्गम और विकास के क्रम को पुरातात्त्विक दृष्टिकोण से संशोधित करते हुए उनके सही ज्ञान को संगीत जगत के सामने प्रस्तुत कर पाएँगे।

संदर्भ

1. अवस्थी, श्रीमति शशि, प्राचीन भारतीय समाज, प्रकाशक-बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, प्रथम संस्करण 1981, पृ. 18
2. देव, बी.सी., वाद्य यंत्र, (अनुवादक-अलका पाठक) प्रकाशक-नेशनल बुक ट्रस्ट भारत, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-1993, पृ. 4
3. मिश्र, लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2002, पृ. 29
4. व्हीलर, मॉर्टिमर, पृथ्वी से पुरातत्त्व, (अनुवादक-हरिहर त्रिवेदी) प्रकाशक- हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण-1968, पृ. 6
5. जोशी, महेशचन्द्र, युग-युगीन भारतीय कला, प्रकाशक-राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण- 1995, पृ. 12
6. Piggot, Stuart, दृष्टव्य: Prehistoric India, Publisher - Cassle and Company LTD., London, First Edition -1962
7. Neumayer, Erwin, Music and Musical Instrument in Indian Rock Art, Puratatva, Bulletin of the Indian Archaeological Society, New Delhi. No. 23, 1992-93, pg. 76
8. वही, पृ. 82
9. वही, पृ. 79
10. वही, पृ. 81
11. शंकर, चित्रा, दृष्टव्य: प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला में संगीत, प्रकाशक-नैतिक प्रकाशन, साहिबाबाद, गाजियाबाद (यू.पी.) प्रथम संस्करण-2017
12. थपल्याल, किरण कुमार, सिंधु सभ्यता, संकटा प्रसाद शुक्ल, प्रकाशक-उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ षष्ठ संस्करण-2003 पृ. 134
13. गोस्वामी, प्रेमचन्द, भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाशक-पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण-1999, पृ. 18
14. V. Smith, Fine Art in India and Ceylon, Indian Antiquty – 35, 1906, p.86
15. चतुर्वेदी, गोपाल मधुकर, भारतीय चित्रकला-ऐतिहासिक संदर्भ, प्रकाशक-जागृति प्रकाशक, अलीगढ़, प्रथम संस्करण-1982, पृ. 69
16. अजंता का वैभव, संपादक-ए. घोष, प्रकाशक-सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, प्रथम संस्करण-1994, पृ. 115
17. शर्मा, लोकेशचन्द्र, भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, गोयल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ, दशम् संशोधित संस्करण-1997, पृ. 69
18. विश्वकर्मा, रामकुमार, भारतीय चित्रकला में संगीत, प्रकाशक प्रकाशन शाखा, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अग्रहायण 1918 (नवम्बर 1996) पृ. 31
19. वही, चित्रफलक-11
20. प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, प्रकाशक-राजस्थानी हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, बारहवां संस्करण 2012, पृ. 177
21. विश्वकर्मा, रामकुमार, भारतीय चित्रकला में संगीत, प्रकाशन शाखा, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अग्रहायण 1918 (नवम्बर 1996) चित्रफलक-35
22. प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, प्रकाशक-राजस्थानी हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, बारहवां संस्करण 2012, पृ. 5-6
23. मिश्र, लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2002, चित्र सूची, पृ. 1

24. भगत, अंजुबाला, मूर्तिकला में संगीत का स्थान, प्रकाशक-अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2010, पृ. 278
25. राव, गंगाधर, महाराष्ट्र की प्राचीन गुफाओं में अंकित वाद्य, पत्रिका, संगीत कला विहार, वर्ष-34, अंक-5, मई-1981, पृ. 141-142
26. भगत, अंजुबाला, मूर्तिकला में संगीत एवं नृत्य, प्रकाशक-अंकित पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृ. 292
27. वही, पृ. 297
28. अजंता का वैभव, संपादक-ए. घोष, प्रकाशक-सूचना और प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, प्रथम संस्करण-1994, पृ. 43
29. गुप्त, परमेश्वरी लाल, भारतीय वास्तुकला, प्रकाशक-विश्वविद्यालयप्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1989, पृ. 68
30. जोशी, महेशचन्द्र, युग-युगीन भारतीय कला, प्रकाशक-राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण-1995, पृ. 157
31. प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, प्रकाशक-राजस्थानी हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, बारहवां संस्करण 2012, पृ. 512
32. राव, गंगाधर, मृणमूर्तियों में अंकित वाद्य, पत्रिका, संगीत कला विहार, वर्ष-36, अंक-5, मई-1983, पृ. 152
33. Deva, B.C., Musical Instrument of India, Publisher- MunshiRam Manoharlal Publishing, New Delhi – First Edition-1978, p.121
34. वाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौंदर्यात्मक अध्ययन, प्रकाशक-ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1992, पृ. 134
35. मिश्र, लालमणि, दृष्टव्य: भारतीय संगीत वाद्य, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2002